https://telegram.me/TheHindu_Zone http://www.ias4india.com

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 10 अंक 34

खाद्य प्रसंस्करण को बढ़ावा

सरकार ने राष्ट्रीय खाद्य प्रसंस्करण नीति का मसौदा सार्वजनिक टिप्पणी के लिए प्रस्तुत किया है। हालांकि यह नीति टुकड़ों में बेहतर प्रतीत होती है लेकिन इसके कुछ अहम प्रावधानों की समीक्षा आवश्यक है। ऐसा करके ही इस क्षेत्र में समावेशी विकास सुनिश्चित किया जा सकेगा। कई नीतिगत उपाय मसलन सब्सिडी, कर रियायत और सीमा शुल्क व उत्पाद शुल्क में रियायत आदि के कई उपाय तो पहले से ही लागू हैं। लेकिन एक बात जो इस नीति को औरों से अलग करती है वह यह कि इसमें कुछ अहम बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया गया है। ये बाधाएं इस क्षेत्र को पूरी क्षमता से विकसित नहीं होने दे रही हैं। इसमें भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को आसान बनाना और श्रम कानूनों में सुधार करना शामिल है। कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण और उनके मूल्यवर्धन को बढ़ावा देने की आवश्यकता पर जोर इसलिए जरूरी है क्योंकि कृषि उपज का एक बड़ा हिस्सा मंडी में पहुंचने के पहले ही नष्ट हो जाता है। इस दस्तावेज में कुल 46 जिंसों में फसल उत्पादन के बाद होने वाले नुकसान का एक राष्ट्रव्यापी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जिसमें कहा गया है कि इसके चलते सालाना करीब 44,000 करोड़ रुपये मूल्य का नुकसान होता है। यह आकलन वर्ष 2009 के थोकमूल्य के आधार पर किया गया है। सब्जियों और फलों जैसी जल्द खराब होने वाली चीजों के मामले में यह नुकसान खासतौर पर बहुत अधिक है। हमारा देश इस क्षेत्र में नुकसान बरदाश्त करने की स्थिति में भी नहीं है। खासतौर पर इसलिए क्योंकि इन जिंसों की आपूर्ति और इनकी कीमतों में काफी उतार-चढ़ाव आता है। अगर इन वस्तुओं का समय से प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन किया जा सके तो इससे बचा जा सकता है। मूल्यवर्धन से तात्पर्य इनको ऐसा रूप देने से है ताकि ये टिकाऊ बन सकें।

प्रस्तावित नीति की एक सकारात्मक बात यह है कि यह खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र के उद्यमियों के लिए सकारात्मक कारोबारी माहौल तैयार करना चाहती है। इसके लिए एकल खिड़की मंजूरी, पहले और बाद में निवेश सेवाओं की व्यवस्था, स्वनियमन और कच्चे माल तथा प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद के लिए पूरे राज्य को एक जोन में बदलना शामिल है। नीति में आपूर्ति मजबूत करने, शीतगृहों का बुनियादी ढांचा दुरुस्त करने, कौशल विकास करने और खाद्य उत्पादकों और प्रसंस्करण करने वालों के बीच अनुबंध के जरिये तथा कॉर्पोरेट कृषि के जरिए रिश्ता कायम करने की बात शामिल है। जमीन के मुद्दे को हल करने के लिए नीति में कहा गया है कि खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों के लिए जमीन पट्टे की सीमा समाप्त की जानी चाहिए। इसके अलावा इनको कृषि इकाई घोषित करने की बात कही गई है ताकि कृषि भूमि को औद्योगिक भूमि में नहीं बदलना पड़े। इसी तरह श्रम कानून के मामले में नीति में कहा गया है कि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को अनिवार्य सेवा का दर्जा दिया जाए और मौसमी उद्योग मानते हुए सामान्य कानूनों से रियायत दी जाए।

मौजूदा स्वरूप में यह नीति बड़ी परियोजनाओं और खाद्य आधारित क्लस्टरों के पक्ष में झुकी हुई है। इसमें छोटी-मझोली इकाइयों के लिए खास जगह नहीं है। सरकार एक दशक से बड़े फूड पार्क का समर्थन करती आई है लेकिन इसका कोई बड़ा फायदा नहीं नजर आया। वर्ष 2008-09 से जिन 40 मेगापार्क को मंजूरी दी गई है उनमें से कुछ ही पूरे हुए हैं। हालांकि हाल के दिनों में हालात सुधरे हैं तो भी इस क्षेत्र की सालाना वृद्धि दर 2.5 फीसदी से आगे नहीं बढ़ सकी है। अब बड़े पैमाने पर छोटे और मझोले उद्यम स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। किसानों से जुड़कर ऐसी इकाइयां काफी अच्छा प्रदर्शन कर सकती हैं। इससे फसल में विविधता आएगी, रोजगार पैदा होगा और किसानों की आय बढ़ेगी। आपूर्ति और कीमत में स्थिरता तो आएगी ही।

विनय सिन्हा

विकास और राजनीतिक कथनों की हकीकत

सही मायनों में आधुनिकीकरण करने के लिए यह आवश्यक है कि जाति और धर्म से परे जाकर वर्ग हित को ध्यान रखकर राजनीति की जाए। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं **नितिन देसाई**

राजनेता अतीत, वर्तमान और भविष्य को लेकर जो बातें कहते हैं उनका विकास के दायरे पर खासा प्रभाव होता है। ऐसी बातें तब राजनीतिक सफलता में तब्दील हो जाती हैं जब लोग खुद को उनसे जोड़ने लगते हैं। खासतौर पर वे युवा जिनके सामने अभी पूरा भविष्य होता है। संसदीय लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, असहयोग, नियोजित विकास, आधुनिक उद्योग धंधों और विज्ञान एवं तकनीक आदि को लेकर जो भी बातें कहीं वे सभी मेरी पीढ़ी को बहुत भायीं। यह वह पीढ़ी थी जो पूर्व औपनिवेशिक शासकों से भी बेहतर होना चाहती थी। इंदिरा गांधी ने वर्ष 1971 में गरीबी हटाओ का नारा दिया जिसमें देश के तत्कालीन 30 करोड़ लोगों की भावनाएं निहित थीं। इन लोगों ने उन्हें वोट भी दिया हालांकि वे इसके बाद भी लगातार गरीबी के भंवर में घिरे रहे।

डॉ. मनमोहन सिंह ने उदारीकरण को हमारे सामने रखा और इसके साथ तमाम युवाओं ने तकनीक से जुड़ी उम्मीदें पाल लीं। उन्हें अपनी वैश्विक तुलनाओं के नियंत्रण से निजात जो चाहिए थी। आज राजनीतिक परिदृश्य में एक बार फिर युवाओं की आकांक्षाओं पर बात होनी चाहिए। ये वे युवा हैं जो आधुनिक अर्थव्यवस्था में सकारात्मक काम चाहते हैं।

उत्तर प्रदेश में हुए हालिया विधानसभा चुनाव में भाजपा को निर्णायक जीत मिली है। वहां एक बार फिर नए राजनीतिक बयान की उम्मीद पैदा हुई है। सवाल यह है कि यह नया राजनीतिक कथन किन लोगों की उम्मीदों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करेगा। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनको लगता है कि इन चुनावों के नतीजे इस बात का प्रमाण हैं कि राजनीति जाति और समुदाय से ऊपर निकल रही है। लेकिन अगर करीबी विश्लेषण किया जाए तो पता चलता है कि यह जातीय समीकरण और सांप्रदायिक भावनाओं के समझदारी भरे प्रबंधन का नतीजा है। भाजपा ने मुख्यमंत्री पद के लिए जो चयन किया है उससे यह व्याख्या सही साबित होती है। इससे यही पता चलता है कि विकास की तमाम बातों के बीच भी हिंदी प्रदेश में आधुनिकीकरण की आकांक्षाओं पर अभी जातीय और सांप्रदायिक वफादारियां भारी हैं।

क्या इसे राष्ट्रीय स्तर पर बरकरार रखा जा सकता है? भाजपा ने उत्तर प्रदेश में जो विशाल जीत हासिल की है उससे कुछ लोगों को यह लग सकता है कि उनको जीत का ऐसा फॉर्मूला हाथ लग गया है जो उन्हें 2018 में हिमाचल प्रदेश, गुजरात और कर्नाटक में होने जा रहे विधानसभा चुनावों में भी जीत दिलाएगा। लोग एक बार फिर एक दल के दबदबे की बात कर रहे हैं। ठीक आजादी के बाद कांग्रेस की तरह जिसने उस वक्त एक बड़े नेता के नेतृत्व में लगभग सभी जगह अपना शासन कायम किया। लेकिन ऐसी तुलना सही नहीं है। अगर आगामी चुनावों में भाजपा अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों को परास्त करने में सफल रहती है तो एक खास विचारधारा का वर्चस्व बढ़ने और अधिनायकवाद का खतरा बढ़ जाएगा। जबकि नेहरू के दौर में सांप्रदायिक और सामाजिक शांति तथा राजनीतिक परिदृश्य में शांति व्यवस्था राजनीतिक संस्कृति का हिस्सा थी।

अगर भाजपा इसी तरह विपक्षी दलों पर जीत हासिल करती गई तो विकास की क्या संभावनाएं शेष रहेंगी? कुछ टीकाकारों और विदेशी निवेशकों को यह नतीजा मजबूत सरकार, तेज नीतिगत सुधारों और बेहतर वृद्धि संभावनाओं की ओर ले जाता दिखता है। लेकिन कुछ लोगों के मुताबिक यह डर भी है कि सत्ताधारी दल इस परिणाम को अपनी लोकलुभावन नीतियों का परिणाम मानकर कल्याण योजनाओं पर खर्च बढ़ाता जाएगा ताकि अपने मतदाता आधार को बढ़ा सके। राजनीति एक मंच है और नोटबंदी एक ऐसी नाटकीय भंगिमा रही जिसने अमीरों को खासी चोट पहुंचाई। आम लोगों को असुविधा और गरीबों से अधिक वास्ता इस बात से था कि इसने अमीरों के लिए दिक्कत पैदा की। क्या यह अमीर विरोधी छवि सरकार को निजीकरण जैसे कदम उठाने से रोकेगी जो अमीरों के मददगार प्रतीत होते हैं? चुनावी दृष्टि से देखा जाए तो भाजपा अगर मौजूदा अभियान में कामयाबी दिलाने वाले मुद्दों का फायदा उठाने में चूक जाती है तो आगे उसे नुकसान भी उठाना पड़ सकता है।

जो चुनावी गणित उत्तर प्रदेश में भाजपा के पक्ष में साबित हुआ हो सकता है वह कहीं और काम न करे। खासतौर पर उत्तर प्रदेश की बात करें तो वहां अच्छी खासी तादाद में स्वतंत्र दलों का अस्तित्व है जो वोटों की प्रतिस्पर्धा में शामिल रहते हैं। कुछ आकलन बताते हैं कि अगर सपा-बसपा और कांग्रेस के वोट एक होते तो भाजपा को बमुश्किल 90-100 सीटें मिल पातीं। जिन राज्यों में 2018 में विधानसभा चुनाव होने हैं वहां भाजपा और कांग्रेस के बीच सीधी लड़ाई है। ऐसे में वहां उत्तर प्रदेश की तरह गैर भाजपा वोट बंटेंगे नहीं।

अगल काले धन और भ्रष्टाचार के मुद्दे पर अनुकूल नतीजे सामने नहीं आए तो मतदाताओं का मोह भंग हो सकता है। संप्रग सरकार के कार्यकाल के आखिरी वक्त में नीतिगत घोटालों को सार्वजनिक बहस में लाना और नोटबंदी जैसा कदम उठाना यह सुझाता है कि इन मुद्दों पर भाजपा की प्रतिबद्धता अन्य दलों से अधिक है। हालांकि नोटबंदी ने काले धन और रोजमर्रा के भ्रष्टाचार पर क्या असर डाला यह अभी भी अनिश्चित है। ट्रांसपैरेंसी इंटरनैशनल द्वारा 2015-16 में कराए गए एक सर्वेक्षण में 69 फीसदी भारतीय प्रतिभागियों ने कहा कि उन्होंने पुलिस या अदालती अधिकारियों को रिश्वत या तोहफा दिया है ताकि उनकी मदद हासिल की जा सके। इन लोगों ने यह भी माना कि सरकारी स्कूल, सरकारी स्वास्थ्य केंद्र पर, कोई आधिकारिक दस्तावेज हासिल करने के लिए या अन्य सेवाएं हासिल करने के लिए भी उन्होंने रिश्वत दी। अगर यह सिलसिला जारी रहा तो भाजपा कोई नई छवि नहीं बना पाएगी।

सबसे अहम चुनौती है युवा श्रमिकों की आकांक्षाओं पर खरा उतर पाना। ये युवा देश के उत्तरी राज्यों में अहम राजनीतिक घटक हैं। जननांकीय लाभांश वहीं घटित हो रहा है। वृद्धि दर बढ़ने से रोजगार की वृद्धि नहीं दिख रही है। ऐसे में अगर हताशा पैदा होती है तो मुश्किल होगी। सांप्रदायिक तनाव और पार्टी समर्थकों की सांस्कृतिक आक्रामकता भी उसके लिए मुश्किल खड़ी कर सकती है। याद रखना होगा कि भाजपा ने देश के सबसे अहम राज्य के मुख्यमंत्री पद पर ऐसी ही छवि वाले व्यक्ति को बिठाया है। ऐसे में सामूहिक हिंसा की वारदात बढ़ सकती हैं और सत्ताधारी दल को इसके चलते विरोध का सामना करना पड़ेगा।

जो विभाजनकारी राजनीति आकार ले रही है वह विकास की आकांक्षाओं को क्षति पहुंचाएगी। जबकि सत्ताधारी दल को मिलने वाले मतों की एक वजह यह भी है। वास्तविक आधुनिकीकरण के लिए राजनीतिक बहस को जाति और धर्म के पुराने चंगुल से बाहर निकालना होगा। फिलहाल तो इसकी संभावना काफी दूर नजर आ रही है।

मांस पर पाबंदी पशुपालकों के लिए नोटबंदी से कम नहीं

जमीनी हकीकत

सुनीता नारायण

हाल ही में आई हमारी किताब फर्स्ट फूड: कल्चर ऑफ टेस्ट में हमने जैव विविधता, पोषण और आजीविका पर चर्चा की है। इसे लेकर मुझसे एक प्रश्न पूछा गया कि बतौर एक पर्यावरणविद मैं आखिर पारंपरिक और स्थानीय खाने का समर्थन और मांसाहार की निंदा क्यों नहीं करती हूं? इसके पक्ष में यह दलील दी जाती है कि मांस का उत्पादन जलवायु के लिए खराब है। कृषि क्षेत्र ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 15 फीसदी के लिए जिम्मेदार है और इसका आधा हिस्सा मांस उत्पादन से आता है। जमीन पर और पानी की खपत के मामले में भी इसकी गहरी छाप है। दुनिया की करीब 30 फीसदी धरती जो बर्फ से नहीं ढकी है, वहां जो अनाज उगाया जाता है वह मनुष्यों के नहीं बल्कि जानवरों के खाने के लिए होता है। वर्ष 2014 में ब्रिटिश भोजन पर ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय द्वार कराए गए एक सर्वेक्षण से पता चला कि मांसाहार वाले भोजन की बात करें तो हर रोज प्रति व्यक्ति 100 ग्राम से अधिक मांस खाने वाले लोगों ने हर रोज 7.2 किलोग्राम कार्बन डाइ ऑक्साइड का उत्सर्जन किया जबकि शाकाहारी भोजन करने वालों ने केवल 2.9 किग्रा कार्बन डाइ ऑक्साइड निकाली। मुझसे कहा गया कि ऐसे में स्थायित्व भरे भोजन की तलाश करना कोई सही बात नहीं।

इस बात से मेरी सहमति नहीं है। बतौर एक भारतीय पर्यावरणविद मैं कई वजहों से शाकाहार की हिमायत नहीं करूंगी। पहली बात, भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है और यहां खानेपाने की संस्कृति समुदायों, क्षेत्र और धर्म के साथ बदलती रहती है। मैं भारत के इस स्वरूप से कोई समझौता नहीं चाहती क्योंकि यह हमारी समृद्धि को दिखाता है और यही हमारी हकीकत है।

दूसरी बात, मांस एक बड़ी आबादी के लिए प्रोटीन का स्रोत है। इसलिए पोषण सुरक्षा की दृष्टि से भी वह अहम है।

तीसरी बात ऐसी है जो मेरे रुख को वैश्विक रुख से अलग करती है। मांस खाना मसला नहीं है बल्कि उसकी मात्रा और उसके उत्पादन का तरीका मायने रखता है। हाल में किए गए एक आकलन के मुताबिक अमेरिका में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष मांस की औसतन खपत 122 किग्रा है। जबकि भारत में यह 3 से 5 किग्रा है। मांस की इतनी अधिक खपत स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों के लिए नुकसानदेह है। औसत अमेरिकी मांस खपत औसत प्रोटीन आवश्यकता से डेढ़ गुना तक ज्यादा है। ऐसे में दुनिया में उत्पादित 9.5 करोड़ टन बीफ में से अधिकांश लैटिन अमेरिका, यूरोप और उत्तरी अमेरिका के पशुओं से हासिल होता है। इन सबका पर्यावरण पर खासा असर है। वहीं अंतरराष्ट्रीय पालतू पशु शोध संस्थान, कॉमनवेल्थ साइंटिफिक ऐंड इंडस्ट्रियल रिसर्च ऑर्गनाइजेशन और इंटरनैशनल इंस्टीट्यूट फॉर एप्लाइड सिस्टम एनालिसिस के मुताबिक विकासशील देशों में मांस का उत्पादन अलग तरह से होता है। यहां पालतू पशु काफी हद तक घास और फसल के बचे खुचे हिस्से पर निर्भर करते हैं।

परंतु भारतीय पर्यावरणविद होने के नाते मेरे मांस के खिलाफ न होने की सबसे अहम वजह यह है कि हमारे देश में पालतू पशु ही किसानों की आर्थिक सुरक्षा का सबसे बड़ा जरिया हैं। हमारे देश के किसान जमीन का इस्तेमाल फसल और वृक्षों के साथ-साथ पशुओं के लिए भी करते हैं। यही उनका असली बीमा है। हमारे देश में इन पशुओं को पालने का काम भी बड़े मांस कारोबारी नहीं बल्कि बड़े, छोटे, सीमांत और भूमिहीन किसान ही करते हैं। यह इसलिए सफल है क्योंकि पालतू पशुओं का एक उत्पादक उद्देश्य होता है: पहला, वे दूध और गोबर देते हैं, उनसे मांस मिलता है और चमड़ा बनता है। अगर यह सब छीन लिया जाए तो देश के लाखों लोगों की आर्थिक सुरक्षा ही छिन जाएगी।

अब जरा चीजों को सीधे परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। अतीत में पालतू पशुओं को सूखे को ध्यान में रखते हुए भी पाला जाता था। सन 1980 के दशक में देश के इकलौते पशु ऊर्जा विशेषज्ञ स्वर्गीय एन एस रामास्वामी ने एक आकलन में कहा था 9 करोड़ पालतू पशुओं से मिलने वाली ऊर्जा देश में मौजूद बिजली क्षमता के बराबर थी। लेकिन मशीनीकरण ने हालात बदल दिए। सन 2000 तक पालतू पशुओं को प्रमुख तौर पर दूध के लिए पाला जाता था। यही वजह है कि सांड, बैल और भैंसों की तादाद लगातार कम होने लगी। फिलहाल कुल पालतू पशुओं में बमुश्किल 28 फीसदी नर हैं। उनका काम बस नस्ल बढ़ाना रह गया है।

लेकिन गाय और भैंस अपने 15-20 साल के जीवन में 7-8 वर्ष ही दूध देती हैं। किसान इस दौरान दूध बेचते हैं और उनसे संतति उपजाते हैं। पशुओं का रखरखाव सस्ता नहीं है। मेरे सहयोगियों का आकलन है कि अगर इन पशुओं को उचित खानपान और रखरखाव दिया जाए तो इसकी लागत तकरीबन 70,000 रुपये प्रति पशु प्रति वर्ष होगी। यही वजह है कि किसानों को गैर उत्पादक पशुओं से निपटने का विकल्प चाहिए। अगर विकल्प नहीं हुआ तो वे जानवरों को यूं ही खुला छोड़ देंगे। इससे दिक्कत बढ़ेगी।

यही वजह है कि मैं मांस या चमड़े पर प्रतिबंध के खिलाफ हूं। ऐसा करके हम पशुपालकों की आय का लगभग आधा हिस्सा छीन लेंगे। यह गरीबों के घर चोरी करने जैसा है। अगर सरकार हमारे घर में घुसकर आधा सामान उठा ले जाए तो हम क्या कहेंगे? मांस पर प्रतिबंध नोटबंदी जैसा ही क्रूर है।

लेकिन मैं यह भी समझती हूं कि धार्मिक भावनाएं मजबूत हैं। गायों को न मारने की वकालत करने वालों से यही कहना है कि वे किसानों से एक-एक गाय खरीदें, बड़ी गौशाला बनवाएं और उनका ध्यान रखें। ऐसा तरीका तलाशें कि इन गायों के मरने के बाद उनके शव को भी निपटाया जाए ताकि उसका कोई हिस्सा बाजारू इस्तेमाल में न आए। ऐसे में इन सवालों का उत्तर शाकाहार को लेकर आक्रामक होने में निहित नहीं है, न ही हिंसा और बर्बरता में है।

कानाफूसी

गुजरात को चाहिए प्रशांत किशोर

गुजरात विधानसभा चुनाव हालांकि अभी कुछ माह दूर हैं लेकिन प्रदेश में अपने आपको मुख्यमंत्री पद का दावेदार मानने वाले कांग्रेसी नेताओं ने अपनी दावेदारी मजबूत करने के लिए सोशल मीडिया पर अभियान छेड़ दिया है। ऐसे लोगों में सबसे मजबूत दावेदार हैं गुजरात विधानसभा के नेता प्रतिपक्ष शंकर सिंह वाघेला और पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष भारत सिंह सोलंकी। उनके अलावा शक्तिसिंह गोहिल, अर्जुन मोढ़वाडिया और सिद्धार्थ पटेल। वाघेला ने तो खुलकर चुनावी रणनीतिकार प्रशांत किशोर की मदद चाही है। किशोर ने उत्तर प्रदेश में पार्टी का प्रचार अभियान संभाला था। हालांकि पंजाब में पार्टी को मिली जबरदस्त जीत के बाद मुख्यमंत्री अमरिंदर सिंह ने प्रशांत किशोर को कोई खास श्रेय नहीं दिया था। वाघेला का मानना है कि प्रशांत किशोर गुजरात और हिमाचल प्रदेश विधानसभा चुनाव जीतने में पार्टी की मदद कर सकते हैं।

कृष्णा बने पहेली

हाल ही में कांग्रेस छोड़कर भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) का दामन थामने वाले कर्नाटक के वरिष्ठ नेता एस एम कृष्णा पर चुटकी लेते हुए कांग्रेस नेताओं का कहना है कि पार्टी कृष्णा को केवल शीर्ष तीन पद नहीं दे सकी। ये पद हैं प्रधानमंत्री, उपराष्ट्रपति और राष्ट्रपति, ऐसे में हो सकता है भाजपा उनको इनमें से कोई पद दे दे।

वहीं भाजपा में इस बात को लेकर अटकलों का दौर चालू हो चुका है कि जुलाई-अगस्त में होने वाले चुनाव में पार्टी राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद का प्रत्याशी किसे बनाना चाहती है। कांग्रेस नेताओं का कहना है कि कृष्णा के पास जनता का समर्थन नहीं है और उनको आगामी विधानसभा चुनाव से पहले दिखावे के लिए भाजपा में शामिल किया गया है।

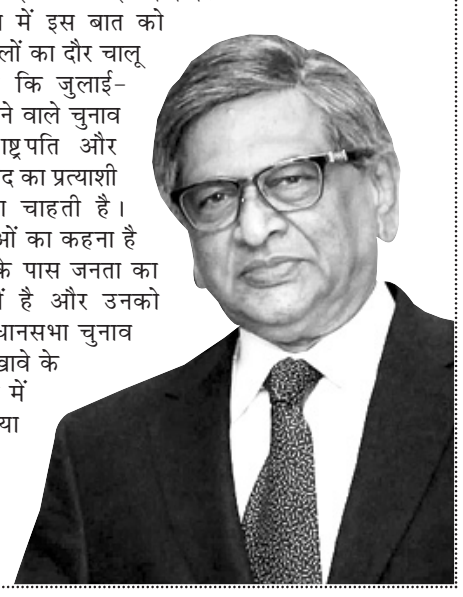

आपका पक्ष

किसानों के हालात सुधारने के हों उपाय

कृषि प्रधान देश में आजादी से लेकर आज तक किसानों की हालत बद से बदतर होती चली गई और कोई भी सरकार इस समस्या को लेकर गंभीर नहीं दिखी। देश के किसानों की कर्ज माफी स्वागत योग्य कदम है। देश के किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत रहेगी तभी हमारा देश खुशहाल और अर्थव्यवस्था का सिरमौर बन सकता है। उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में ऐतिहासिक जीत दर्ज करने वाली भाजपा की सरकार प्रदेश के किसानों का कर्ज माफ करेगी। यह कर्ज माफी किसानों के जख्मों पर मरहम का काम करेगी। चुनाव के दौरान भाजपा की ओर से जारी किये गए लोक कल्याण संकल्प 2017 में यह वादा किया गया था कि यदि पार्टी सत्ता में आयी तो सूबे के सभी लघु एवं सीमांत किसानों का फ सली ऋ ण माफ किया जाएगा। भाजपा के वादे पर अमल के लिए बजट में भारी भरकम

राशि की दरकार होगी। दूसरा पक्ष यह है कि आखिर सरकारे ऐसी व्यवस्था क्यों नही करती कि किसानों को कर्ज लेना ही न पड़े और किसान सूखा तथा प्राकृतिक आपदाओं से निपटने में सक्षम हो। सरकारों द्वारा किसानों की कर्जमाफी कर एक प्रकार से किसानों को कर्ज नहीं चुकता करने के लिए बढ़ावा देना ही न

उत्तर प्रदेश में किसानों की कर्ज माफी का वादा पूरा करने लिए भारी-भरकम राशि की दरकार

माना जाएगा। सरकार उत्तर प्रदेश के किसानों का ही कर्ज क्यों माफ कर रही है। अगर करना ही है तो पूरे देश के किसानों का क्यों नहीं? अगर उत्तर प्रदेश के ही किसानों का कर्ज माफ होता है तो पूरे देश के किसानों में बहुत ही गलत संदेश जाएगा जिससे कर्ज माफी को लेकर देश भर के किसान आंदोलन भी कर सकते हैं। इस कर्ज माफी से देश की अर्थव्यवस्था और बैंको की भी आर्थिक स्थिति चरमरा सकती है। सरकार को कर्ज माफी का बोझ आम करदाताओं पर कर बढ़ाकर नहीं डालना चाहिए, बल्कि अन्य स्रोतों से इसकी पूर्ति होनी चाहिए।

सतीश चंद यादव, महाराजगंज

बूचड़खानों के लिए बने नई नीति

उत्तर प्रदेश की नवनिर्वाचित योगी सरकार अवैध बूचड़खानों पर सख्ती से कार्रवाई कर रही है। इन बूचड़खानों को बंद किया जा रहा है। ऐसा होना भी चाहिए। कोई भी अवैध काम की इजाजत नहीं मिलनी चाहिए। राज्य सरकार की इस कार्रवाई के खिलाफ मीट कारोबारी हड़ताल पर चले गए हैं। कुछ बूचड़खाना मालिकों का कहना है कि हमने बीते वर्षों में लाइसेंस लेने व अन्य नियमों के अनुपालन के लिए आवेदन किया था। लेकिन प्रशासन ने कोई कदम नहीं उठाया। ऐसे में सरकार को ऐसे कारोबारियों को वैध तरीके से कारोबार करने की इजाजत देने पर काम करना चाहिए, जिनके बूचड़खाने अवैध होने से बंद किए गए हैं। चूंकि सरकार कह रही है कि सिर्फ अवैध बूचड़खाने बंद किए जा रहे हैं और वैध बूचड़खानों पर कोई कार्रवाई नहीं होगी। इसलिए सरकार को बूचड़खानों के लिए नई नीति बनानी चाहिए। जिसमें अवैध बूचड़खाने वाले नियमों को पालन कर वैध कारोबार कर सकें। इससे ना तो कारोबारियों को नुकसान होगा और ना ही इस कारोबार से जुड़े लोगों का रोजगार छिनेगा।

इमरान खान, लखनऊ

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।